विषय-ज्ञान दोनों को स्मरण करता है। पुनः प्रश्न है कि अनुभव और स्मृति में भेद क्या है? भाष्यकार के अनुसार अनुभव कारणरूप है तथा स्मृति कार्यरूप है। अनुभव अज्ञात विषय का ज्ञान है तथा स्मृति ज्ञात विषय का ज्ञान है। स्मृति दो प्रकार की है- यथार्थ और अयथार्थ। यथार्थ-स्मृति यथार्थ पदार्थ का स्मरण कराती है तथा अयथार्थ स्मृति कल्पित, मिथ्या पदार्थ का स्मरण कराती है। एक का विषय विद्यमान पदार्थ है, दूसरे का विषय अविद्यमान पदार्थ है। उदाहरणार्थ, स्वप्नावस्था में जो जाग्रत अवस्था के देखे हुए पदार्थों का स्मरण होता है वह अयथार्थ स्मृति है तथा जाग्रत अवस्था में जो स्वप्नावस्था के देखे हुए पदार्थों की स्मृति होती है वह यथार्थ है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि रज्जुसर्प का अनुभव अनुभवाभास है, उसी प्रकार स्वप्न की स्मृति स्मृत्याभास है।

चित्तवृत्ति निरोधोपाय

चित्तवृत्तियों के निरोध को योग की संज्ञा दी गई है-

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। (योगसूत्र 1/2)

वृत्तियों के निरोध को योग बतलाकर आचार्य पतञ्जलि इन वृत्तियों के निरोध के दो उपाय बतलाते हैं- अभ्यास और वैराग्य-

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। (योगसूत्र 1/12)

इन दोनों मार्गों से चित्त-वृत्तियों का निरोध हो जाता है। इनमें वैराग्य के द्वारा चित्त-वृत्तियों का बाह्य-प्रवाह का निरोध होता है तथा अभ्यास के द्वारा अन्तःप्रवाह को गतिशील बनाया जाता है अर्थात् वैराग्य द्वारा निरुद्ध संस्कारों की अभ्यास के द्वारा दृढ़ता की जाती है। चित्त एक ऐसी नदी के समान है, जिसमें अनादि काल से वृत्तियों का अनवरत प्रवाह चालू है। चित्त-नदी की दो धाराएँ हैं- एक प्राकृतिक विषयों के मार्ग से बहती हुई अज्ञान-अन्धकारमय संसार सागर में मिल जाया करती है तथा दूसरी विवेक-मार्ग से बहती हुई आत्मसाक्षात्काररूप प्रकाशमय कल्याण

सागर में जा मिलती है। संसार-सागर में मिलने वाली धारा दुःखजनक होने से 'पापवहा' कहलाती है। उनमें वैराग्य से विषयों का स्रोत नष्ट किया जाता है तथा ज्ञान के अभ्यास से विवेक का स्रोत खोला जाता है अर्थात् बाह्य प्रवाह को रोककर अन्तःप्रवाह को गतिशील बनाया जाता है। अतः बाह्य और अन्तःप्रवाह दोनों के निरुद्ध हो जाने पर ही चित्त-वृत्ति निरोध रूप योग की प्राप्ति होती है।

भगवद्गीता में भी जब अर्जुन, भगवान् श्रीकृष्ण से मन को वश में करने का उपाय पूछते हैं तो श्रीकृष्ण अभ्यास और वैराग्य को उपाय में बतलाते हुए कहते हैं-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।। (गीता 6/35)

अर्थात् हे महाबाहु अर्जुन! इसमें सन्देह नहीं है कि मन चञ्चल है और उसका निग्रह करना कठिन है। परन्तु हे कौन्तेय! अभ्यास और वैराग्य से उस चञ्चल मन को भी अपने वश में किया जा सकता है।

अभ्यास- अभ्यास की परिभाषा देते हुए आचार्य पतञ्जलि कहते हैं-

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः। (योगसूत्र 1/13)

अर्थात् अभ्यास और वैराग्य में से चित्त-वृत्तियों के निरोध के लिए जो बार-बार प्रयत्न किया जाता है, उसका नाम अभ्यास है। यहाँ पर प्रयुक्त 'स्थिति' पद को स्पष्ट करते हुए भाष्यकार कहते हैं-

चित्तस्यावृत्तिकस्य प्रशान्तवाहिता स्थितिः।
(योगसूत्र 1/13 पर व्यासभाष्य)

अर्थात् चित्त के वृत्तिरहित होकर शान्तप्रवाह में बहने को स्थिति कहते हैं। अतः इस स्थिति के लिए यत्न करने को ही अभ्यास कहते हैं। यहाँ अभ्यास से पतञ्जलि का तात्पर्य यम-नियमादि आठों अंगों के अभ्यास से ही है। वाचस्पति मिश्र भी तत्त्ववैशारदी में इस बात को पुष्ट करते हुए कहते हैं-

स्थितिसाधनान्यन्तरङ्गबहिरङ्गाणि यमनियमादीनि।
(योगसूत्र 1/13 पर तत्त्ववैशारदी)

आचार्य पतञ्जलि कहते हैं कि अभ्यास दीर्घकालिक, निरन्तर आचरित, तप, ब्रह्मचर्य, विद्या तथा श्रद्धा के द्वारा सम्पादित होकर ही दृढ़भूमि को प्राप्त करता है-

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः। (योगसूत्र 1/14)

अभ्यास काल में धैर्य रखना चाहिए अर्थात् दीर्घकाल तक अभ्यास का आसेवन-अनुष्ठान किया जाना चाहिए। दीर्घकाल के अभ्यास में यह भी आवश्यक है कि अन्तराल में उसका कभी विच्छेद न हो पाए। दीर्घकाल तक वह अभ्यास निरन्तर रहना चाहिए। दीर्घकाल और नैरन्तर्य के साथ-साथ अभ्यास के प्रति श्रद्धा-विश्वास बनाए रखना चाहिए अर्थात् श्रद्धापूर्वक तथा पूर्णनिष्ठा के साथ उसका अनुष्ठान करना चाहिए। यदि अभ्यास में आदर व श्रद्धा योगामार्गी की न हो, वह केवल दिखावे के लिए किया जाए, तो ऐसा अभ्यास कभी सफल नहीं होता। अतः अभ्यास श्रद्धापूर्वक होना चाहिए। अभ्यास काल में शीतोष्ण, सुख-दुःख जन्य आघात-सहन रूपी तप, इन्द्रिय निग्रह, विवेक का पालन अनिवार्य है, तभी अभ्यास दृढ़ होकर योग-हेतु दृढ़ सिद्धि की भूमि बना पाएगा अर्थात् ऐसा अभ्यास ही चित्तवृत्तियों के निरोध में सफल होता है।

वैराग्य- अभ्यास के साथ वैराग्य को भी चित्तवृत्ति निरोध का उपाय बतलाया गया है। तृष्णारहित होना ही वैराग्य है। इसे वशीकार संज्ञा कहते हैं। वैराग्य दो प्रकार का होता है- पर वैराग्य और अपर वैराग्य। वैराग्य की परिभाषा देते हुए पतञ्जलि कहते हैं-

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्। (योगसूत्र 1/15)

अर्थात् इहलौकिक तथा पारलौकिक जितने भी भोग-विषय हैं, उनके प्रति तृष्णारहित हो जाना वशीकार संज्ञक वैराग्य है। इसी को अपर वैराग्य भी कहते हैं।

यहाँ पर इहलौकिक विषयों से तात्पर्य चन्दन, वनिता अन्नपानादि से हैं तथा पारलौकिक विषयों से तात्पर्य स्वर्ग, अमृत, अप्सरा इत्यादि से है। इन सभी प्रकार के दृष्ट और श्रुत विषयों में आसक्ति का अभाव ही अपर वैराग्य कहलाता है। तात्पर्य यह है कि लौकिक और पारलौकिक सभी विषय नीरस तथा दुःखरूप हैं, अतः इन विषयों में तृष्णा का सर्वथा अभाव योग के लिए आवश्यक है। अपर वैराग्य से ही सम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है।

पर वैराग्य का लक्षण देते हुए आचार्य पतञ्जलि कहते हैं–

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्। (योगसूत्र 1/16)

अर्थात् प्रकृति–पुरुष सम्बन्धी यथार्थ ज्ञान के हो जाने पर अर्थात् आत्मज्ञान हो जाने पर प्रकृति के गुणों में तृष्णा का सर्वथा अभाव हो जाना 'परवैराग्य' कहलाता है। इसी परवैराग्य से असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है। सम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति श्रद्धा, वीर्य तथा ध्यान द्वारा होती है तथा अपर वैराग्य सम्प्रज्ञात समाधि की उत्पत्ति में कारण होता है। इन्हीं श्रद्धादि का अभ्यास करने पर सम्प्रज्ञात समाधि के पश्चात् प्रज्ञा का उदय होने पर 'परवैराग्य' से असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है। 'परवैराग्य' ज्ञान का चरमकोटिक वैराग्य है, जिसके उदय होने पर तत्त्वदर्शी योगी ऐसा मानता है कि प्राप्तव्य प्राप्त हो गया, नष्ट करने योग्य अविद्यादि क्लेश नष्ट हो गए और जन्म–मरण का शृंखलाबद्ध चक्र टूट गया। यहाँ परवैराग्य ज्ञान की पराकाष्ठा है। परवैराग्योपरान्त ही कैवल्य की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य दोनों मिलकर पारस्परिक सहयोग से चित्तवृत्ति निरोध के प्रबल साधन हैं। जैसे पक्षी दोनों पंखों के सहारे आकाश में उड़ता है और अनुकूल अभिमत को प्राप्त करता है, ऐसे ही अध्यात्म मार्ग का यात्री अभ्यास–वैराग्य द्वारा अपने अभीष्ट को प्राप्त करता है।